A First EPQRST Journal-www.jahnavisanskritejournal.com, Issue-17th, Vol.-V, 14.1.14

ISSN 976-8645

आधुनिक नैतिक समस्याएं व समाधान

(प्रमुख एकादश उपनिषदों के सन्दर्भ में)

हरिओम शरण मुद्गल्

कूटशब्द *श्रेय, प्रेय, ब्रह्मचर्य, सत्संग, सत्य।*

प्राचीन काल में दर्शन धर्म के साथ अनिवार्यतया सम्पृक्त था, इसीलिये यहां सभी धर्मों और मतों को समान आदर प्राप्त हुआ तथा धर्म के नाम पर विद्वेष को पनपने का कभी अवसर नहीं मिला। वर्तमान स्थिति यह है कि मनुष्य अपने निजी स्वार्थ के लिये घृणित से घृणित कार्य करने से भी नहीं चूकता। आज के युग को ऐसे विचारों की आवश्यकता है जिनसे ऐसे मनुष्यों का हृदय परिवर्तन हो सके जो विसंगति, दुर्व्यसनों आदि के परिणाम स्वरूप अपने वास्तविक मनुष्यत्व को भूलकर पशुवत् नहीं अपितु उससे भी अधिक ऐसे आचरण कर देते हैं जिनकी व्याख्या के लिये पर्याप्त शब्द हमारे पास नहीं हैं। आधुनिक युग को कुछ ऐसे विचारों की आवश्यकता है जिनको अपना कर सर्वत्र सम दृष्टि की प्राप्ति हो सकती है। यदि उपनिषदों की ओर दृष्टिपात किया जाए तो हमें आश्चर्य होगा प्राचीन मनीषियों की दृष्टि पर एवं उनके चिन्तन पर, यदि उनकी एक झलक भी आधुनिक मानव को दृष्टिगत हो तो मनुष्य को मनुष्य बनाया जा सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र आधुनिक युग के सन्दर्भ में प्रस्तुत किया जायेगा, जिसमें औपनैषदिक सिद्धान्तों द्वारा आधुनिक मानव की नैतिक समस्याओं का समाधान करने का प्रयास लक्ष्यभूत होगा।

उप और नि उपसर्ग पूर्वक सद् धातु से क्विप् प्रत्यय होकर उपनिषद् शब्द की निष्पत्ति है । सद् धातु के तीन अर्थों विशरण, गति (प्राप्ति) और अवसादन में से प्राप्त होना अर्थ ही उपयुक्त प्रतीत होता है, क्योंकि उपनिषदों का प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म ही है अन्य तो गौण विषयों की श्रेणी में ही परिगणित किये जा सकते हैं । यद्यपि उपनिषदों की संख्या दो सौ पर्यन्त मानी जाती है उनमें से भी 108 को सारभूत[3] माना जाता है । इनमें से भी दश उपनिषदों[4] का अत्यधिक प्रसिद्धि के साथ महत्त्व है। इन दश उपनिषदों के अतिरिक्त श्वेताश्वतरोपनिषद् पर भी आचार्य शंकर का भाष्य उपलब्ध है । इन उपनिषदों में अनेक सिद्धान्त ऐसे हैं जिनकी आधुनिक प्रासंगिकता की दृष्टि से व्याख्या सम्भव है एवं आधुनिक युग की अनेक नैतिक समस्याओं का समाधान इन सिद्धान्तों को अपना कर किया जा सकता है ।

ISSN 976-8645

आधुनिक नैतिक समस्याएं व समाधान

आधुनिकता के प्रभाव के कारण आज अनेक आचार संबंधी समस्याओं से यह समाज व्याप्त हो रहा है । सबसे प्रथम समस्या यह है कि मनुष्य जिन सुख-सुविधाओं को प्राप्त करने की कामना कर रहा है उनकी अप्राप्ति । यदि उनकी प्राप्ति हो भी जाती है तो भी उसके मन में शांति नही है क्योंकि वह लोभ के कारण अत्यधिक प्राप्त करने की इच्छा करता है, इसके साथ ही ईर्ष्या, द्वेष, काम, क्रोध आदि के वशीभूत होकर वह अकृत्य कर्मों को करने से भी नहीं चूकता यहाँ तक कि निरपराध प्राणियों के प्रति दया की भावना का भी उसके हृदय में स्थान नहीं है । ''प्रजापति ब्रह्मा ने देवों, मनुष्यों, असुरों, को एक ही अक्षर 'द्' देकर क्रमशः दमन, दया और दया का उपदेश दिया।''[5]

''तदेतदेवैषा देवी वागनुवदति स्तनयित्नर्द द द इति दाम्यत दत्त दयध्वमिति तदेतत् त्रयँ शिक्षेद्दमं दान दयामिति।''[6]

तथापि आधुनिक युग में अनेक नैतिक समस्यायें मनुष्य के समक्ष हैं । निम्न बिन्दुओं के माध्यम से कुछ इसी प्रकार की समस्याओं का निराकरण उपनिषदों के द्वारा करने का प्रयास किया जा रहा है-

(1) उपनिषदों में शिक्षा द्वारा युग निर्माण की अवधारणा—शिक्षा प्रत्येक युग की आवश्यकता होती है, चाहे वह युग आधुनिक हो या प्राचीन । लेकिन आधुनिक परिवेश में शिक्षा का विकृत स्वरूप दृष्टिगोचर होता है।

यद्यपि आधुनिक युग में अनेक वैज्ञानिक विषयों की बहुलता से वैदिक शिक्षा पद्धति का संचरण सम्भव नहीं है तथापि गुरु-शिष्य संबंधों में बदलाव आना व छात्रों का आचरण शुद्ध न होना आधुनिक युग की महती विडम्बना है। आधुनिक युग में छात्र-संघर्ष, छात्र राजनीति, छात्रों का व्यसनी होना, कुकृत्यों में सम्मिलित होना, शिक्षा को व्यवसाय से जोड़ कर पढ़ना, छात्रों की गुरु के प्रति पर्याप्त श्रद्धा का अभाव इत्यादि शिक्षा से संबंधित आधुनिक युग के कुछ निर्बल पक्ष हैं, यदि इन पक्षों का निराकरण न किया जायेगा तो देश को भ्रष्टता की गर्त में जाता हुआ देखना कोई आश्चर्य नहीं होगा।

तैत्तिरीयोपनिषद् की शीक्षावल्ली में उपरोक्त कथ्यों का निराकरण करने का महत् सामर्थ्य विद्यमान है-

''अध्ययन और अध्यापन दोनों बहुत ही उपयोगी है, शास्त्रों के अध्ययन से ही मनुष्य को अपने कर्तव्य तथा उसकी विधि का और फल का ज्ञान होता है । अतः इन्हें करते हुये ही उसके साथ-

ISSN 976-8645

साथ यथायोग्य सदाचार का पालन, सत्यभाषण, स्वधर्मपालन के लिये बडे से बडा कष्ट सहना, इन्द्रियों को वश में रखना, मन को वश में रखना, अग्निहोत्र के लिये अग्नि को प्रदीप्त करना, फिर उसमें हवन करना चाहिये।[7]'' अत: स्वाध्याय और प्रवचन का अत्यधिक महत्त्व है ।

अत: आधुनिक युग को अध्ययन व अध्यापन के महत्त्व को समझते हुये सदाचारपालन पर भी मस्तिष्क को केन्द्रित करने की आवश्यकता है, क्योंकि जब तक ऐसा नहीं होगा तव तक गुरु और शिष्यों के संबंधों में माधुर्य नहीं होगा फलस्वरूप युग निर्माण में बाधा उत्पन्न होगी। अत: उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर उचित आचरण की आवश्यकता है तभी शिक्षा संबंधी आधुनिकयुगीन आचारमीमांसीय समस्याओं का निराकरण संभव है ।

(2) भोग और त्याग के सुन्दर समन्वय से युग निर्माण—उपनिषद् भोग और त्याग के समन्वय को ही प्राथमिकता देते हैं, ईशावास्योपनिषद् का निम्न मन्त्र इसी ओर संकेत करता है-

''ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा: मा गृध: कस्य स्विद् धनम्॥''[8]

उपनिषद् भोग करने का निषेध नहीं करते लेकिन त्याग को विशेष महत्त्व देते हैं । कितना सुन्दर समन्वय है यह भोग और त्याग का, जो कि आधुनिक युग की सबसे महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। इन दोनों का स्वरूप निर्णय भी आवश्यक है। कठोपनिषद् में कहा गया है कि-

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीर: । श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद्वृणीते॥''[9]

जिसमें श्रेय सदा के लिये सब प्रकार के दु:खों से छूटकर नित्य आनन्दस्वरूप परमात्मा को प्राप्त करने का उपाय है एवं प्रेय इहलोक और स्वर्गलोक की सभी सामग्रियों को प्राप्त करने का उपाय है।

इसके अतिरिक्त मानव का उदासीन होना भी उपनिषद् को स्वीकार नहीं है-

''इस लोक में कर्म करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करे। इस प्रकार मनुष्यत्व का अभिमान रखनेवाले तेरे लिये इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं है, जिससे तुममें कर्म का लेप न हो।''[10]

इस प्रकार स्पष्टतया कहा जा सकता है भोग और त्याग के सुन्दर समन्वय से युग को अत्यन्त शक्तिशाली बनाया जा सकता है अत: भोग और त्याग का समन्वय आधुनिक युग की अत्यन्त

ISSN 976-8645

महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है, अतः आधुनिक मानव को चाहिए कि वह केवल भोग को ही जीवन का अन्तिम सत्य न माने बल्कि उसके साथ त्याग की प्रवृत्ति को भी अपनाये ।

(3) आधुनिक युग की आवश्यकता सर्वत्र समदृष्टि— समदृष्टि के विषय में उपनिषदों में कहा गया है–

''यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥
यस्मिन् सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद् विजानतः।
तत्र को मोह कः शोकः एकत्त्वमनुपश्यतः॥''[11]

अर्थात् जो मनुष्य प्राणिमात्र को सर्वाधार परब्रह्म पुरुषोत्तम परमात्मा में देखता है और सर्वान्तर्यामी परमप्रभु परमात्मा को प्राणिमात्र में देखता है, वह कैसे किससे घृणा या द्वेष कर सकता है। इस प्रकार उसका मोह और शोक भी नष्ट हो जाता है।[12]

अब प्रश्न उठता है कि समदृष्टि किस प्रकार होगी । पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण समदृष्टि में सर्वाधिक बाधक तत्त्व है। हमें अपनी पुरातन संस्कृति में आधुनिकता के बीजों को ढूँढना होगा। इन्द्रियनिग्रह, ब्रह्मचर्य, योग इत्यादि का आश्रय लेना होगा जिससे कि प्राणिमात्र में समदृष्टि का भाव विकसित हो सके । जब ऐसा संभव हो सकेगा तभी अनेक प्रकार के कुकृत्यों से समाज को बचाया जा सकेगा इसमें किसी प्रकार की भी विप्रतिपत्ति की संभावना नहीं है । इस प्रकार समाज से अनेक प्रकार की विकृतियों का निराकरण किया जा सकता है ।

(4) ब्रह्मचर्य आधुनिक युग को शक्तिशाली बनाने का साधन— ब्रह्मचर्य को जीवन का आधारस्तम्भ कहा जाता रहा है–

''प्रासादस्य विनिर्माणे मूलभित्तिरपेक्ष्यते।
तथैव जीवनस्यादौ ब्रह्मचर्यमपेक्षते॥''

ब्रह्मचर्य क्या है? एवं उसका लक्षण क्या है? इस जिज्ञासा के उत्तर में गोत्रप्रवर्तक महर्षि शाण्डिल्य ने कहा है –

''ब्रह्मचर्य नाम सर्वावस्थासु मनोवाक्कायकर्मभिः सर्वत्र मैथुनस्त्यागः।''

ब्रह्मचर्य के अभाव के कारण ही मानव अपनी वासनाओं की तृप्ति हेतु नित्य नवीन अपराध करता जा रहा है, समाचार पत्र व मीडिया इस तथ्य को प्रमाणित करने में सक्षम हैं कि काम से पीडित

ISSN 976-8645

व्यक्तियों द्वारा अपनी वासनाओं की तृप्ति हेतु नित्य ही घृणित कृत्य किये जा रहे हैं । इसी कारण AIDS जैसी घातक बीमारी से पीडित व्यक्तियों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढती जा रही है। केवल एक ब्रह्मचर्य का पालन ही इन समस्याओं के निराकरण में सक्षम है । युवाओं को इस ओर प्रेरित करने की आवश्यकता है। ब्रह्मचर्य के महत्त्व को प्रकाशित करने में उपनिषद् सर्वतोभावेन सक्षम हैं। पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण करने से हम अपनी मूल संस्कृति को भूल गये हैं । अत: अपनी संस्कृति के मूलतत्त्वों को स्मरण करने की आवश्यकता है । अथर्ववेद में ब्रह्मचर्य की महिमा को द्योतित करता हुआ ब्रह्मचर्य सूक्त ही प्रतिष्ठि है-

''ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते॥''[13]

ब्रह्मचर्यपालन से शक्ति आती है और शक्ति से दुष्टदमन होता है, अत: राष्ट्ररक्षा कही गई है। इस प्रकार राजनीति की शिक्षा में तो ब्रह्मचर्य की प्रधानता थी ही, दूसरी सभी शिक्षाओं में आचार्य ब्रह्मचर्य के द्वारा ही अन्तेवासी छात्र का चयन करते थे। इसका उदाहरण कठोपनिषद् के यम-नचिकेता संवाद में है-

''सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति तपाँ सि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥''[14]

यहाँ **'यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं'** का गुरुकुलवास अथवा ब्रह्मप्राप्ति से तात्पर्य है। गुरुकुलवास का लक्षण नैष्ठिक ब्रह्मचर्य से संबंध रखता है। इन्द्र-विरोचन आख्यायिका कथित ब्रह्मविद्या का अङ्ग ब्रह्मचर्य ही है। अथर्ववेद में कहा गया है-

''ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।''[15]

ब्रह्मचर्य के भय से मृत्यु भी सहसा मारने को तैयार नहीं होती। अत: ब्रह्मचर्य जीवनचर्या में वरेण्य है, सदाचार का प्रथम सोपान है एवं सबसे अधिक इसका पालन आधुनिक भोगप्रवृति को शमन करने की क्षमता रखता है

उपर्युक्त सिद्धान्तों के अतिरिक्त कुछ अन्य आचारसंबंधी सिद्धान्त उपनिषदों के अनुसार निम्नरूप में प्रतिपादित किये जा सकते हैं जिनसे आधुनिक युग की आचारमीमांसीय समस्याओं का निराकरण संभव है।

(5) सत्सङ्गति का उपदेश—सज्जन मनुष्यों के संग को सत्संगति कहा गया है-**''सतां सङ्गः सत्सङ्गः''**। कुसंग के प्रभाव से ही समाज में अनेक समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं । इसीलिये उपनिषदों में सत्पुरुषों के संग का उपदेश दिया गया है-

ISSN 976-8645

''उत्तिष्टत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्यधारा निशिता दुरत्यया
दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति॥''[16]

अत: सत्सङ्गति से मनुष्य की बुद्धि में सद्विचार आते हैं जो उसे कुकृत्यों को करने से रोकते हैं, इस प्रकार सत्संगति आधुनिक समस्याओं के निराकरण में अत्यन्त सक्षम है, यही उपनिषदों का निर्देश व उपदेश है।

(6) सत्य की पराकाष्ठा—सत्य ही विजयी होता है, असत्य नहीं, क्योकि वह देवयान नामक मार्ग से परिपूर्ण है, जिससे पूर्णकाम ऋषिलोग वहाँ गमन करते हैं जहाँ वह सत्यस्वरूप परब्रह्म परमात्मा का उत्कष्ट धाम है–

''सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम्॥''[7]

यदि उपनिषद् के इस तथ्य का अक्षरश: पालन किया जाये तो सत्यपालन से हुये निर्मल चित्त द्वारा घृणित कृत्यों की सम्भावना नगण्य हो जाती है एवं आधुनिक समस्याओं का समाधान सम्भव हो जाता है ।

(7) धन होना ही पर्याप्त नहीं सदाचार आवश्यक—मैत्रेयी ने याज्ञवल्क्य से धन नहीं माँगा। महर्षि द्वारा उसकी इच्छा जानने पर मैत्रेयी ने कहा कि भगवन्! जिस धन की प्राप्ति से मुझे अमरत्व की प्राप्ति नहीं होगी उस धन को लेकर मैं क्या करूंगी–

''येनाहं नामृता स्यां किमहं कुर्यां यदेव भगवान् वेद तदेव मे ब्रूहीति।''[18]

अत: भौतिकता में सुख खोजना मूर्खता के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जनसाधारण भी इस तथ्य से परिचित है फिर भी न जाने क्यों वह भौतिक संसाधनों की प्राप्ति में अपने अमूल्य जीवन को नष्ट कर रहा है। संसाधनों की प्राप्ति तो ठीक है लेकिन वह अपने आचारों को भी धन के मद में भूलता जा रहा है।

(8) समाज व आधुनिकता के साथ समन्वय आवश्यक—आधुनिक परिवेश में मनुष्य इतन व्यस्त हो गया है कि वह समाज में रहना तो दूर की बात वह अपने पारिवारिक जनों को भी समय नहीं दे पाता। काम के इसी दबाव ने मनुष्य को तनाव (Dippretion) की स्थिति में पहुंचा दिया है।

उपनिषदों को न तो एकान्तिकता प्रिय है और न ही अत्यधिक आत्यन्तिकता। अत: समाज से समन्वय बनाना अत्यन्त आवश्यक है तो एक सीमा तक किन्तु समाज से पृथक् होकर जीवन यापन नहीं किया जा सकता। यही आधुनिक युग की भी आवश्यकता है। उपनिषद् वाक्यों के अनुसार–

ISSN 976-8645

''सोऽकामयत । बहु स्यां प्रजायेयेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्प्तप्वा इदँ सर्वमसृजत यदिदं किं च।''[19]

अत: ईश्वर को एकान्तिकता का शून्यमय वातावरण अच्छा नहीं लगा इसलिये उसने कामना की कि मैं अधिक हो जाऊँ। कामना के सौजन्य से वह अनेक रूपों में हो गया। अत: समाज में समन्वय बनाने से तनाव इत्यादि मानसिक समस्याओं का निराकरण संभव है।

समाज में रहने के अतिरिक्त भौतिकता एवं आध्यात्मिकता में समन्वय भी अत्यन्त अनिवार्य है। उपनिषद् उद्घोषणा करते हैं यथा ईशावास्योपनिषद् इसी तथ्य को स्पष्ट करता है-

अन्धं तम: प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्याँ रता: ॥
अन्धं तम: प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायाँ रता: ॥

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि समाज व आधुनिकता के साथ समन्वय बना कर चलने से ही मनुष्य तनाव आदि मानसिक समस्याओं से निदान पा सकता है व आनन्दपूर्वक जीवनयापन कर सकता है जिससे उसका मन शान्तप्रकृति को प्राप्त होगा एवं अच्छे कार्यों का सम्पादन करने में तत्पर होगा जिससे आधुनिक आचार संबंधी समस्याओं का निराकरण संभव होगा।

अन्तटिप्पणी

1. WAVES के सत्रहवें भारत सम्मेलन २२-२४ नवम्बर २०१३, अखिल भारतीय संस्कृत परिषद् लखनऊ में प्रस्तुत शोधपत्र
2. शोध-छात्र, संस्कृत विभाग कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, mudgal.hariom@gmail.com
3. सर्वोपनिषदां मध्ये सारमष्टोत्तरशतम्। सकृच्छ्रवण मात्रेण सर्वाघौघनिकन्दनम्।।-मुक्तिकोपनिषद्
4. ईशकेनकठप्रश्नमुण्डमाडूक्यतित्रिर: । ऐतरेयं च छान्दोग्यं वृहदारण्यकं तथा।।-मुक्तिकोपनिषद्
5. बृहदारण्यकोपनिषद्-५/२/१.२.३
6. बृहदारण्यकोपनिषद्-५/२/३
7. तैत्तिरीयोप्निषद्-१/९

ISSN 976-8645

8. ईशावास्योपनिषद्–१
9. कठोपनिषद्–२/२
10. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ समा: । एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।। ईशावास्योपनिषद्–२ ।।
11. ईशावास्योपनिषद्–६.७
12. ईशावास्योपनिषद्–६,७
13. अथर्ववेद–११/५/१७
14. कठोपनिषद्–२/१/१५
15. अथर्ववेद–११/५/१९
16. कठोपनिषद्–१/३/१४
17. मुण्डकोपनिषद्–३/१/६
18. बृहदारण्यकोपनिषद्–४/५/४
19. तैत्तिरीयोपनिषद्–२/६

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. ''ईशादिनौउपनिषद्'', शाङ्करभाष्यार्थ, गीताप्रेसगोरखपुर, 2009 ई.
2. ''बृहदारण्यकोपनिषद्'', शाङ्करभाष्यार्थ, गीताप्रेसगोरखपुर, 2010 ई.
3. ''छान्दोग्योपनिषद्'', शाङ्करभाष्यार्थ, गीताप्रेसगोरखपुर, 2010 ई.
4. ''ईशादिनौउपनिषद्'', गीताप्रेसगोरखपुर, 2006 ई.
5. गोयन्दका, हरिकृष्णदास, ''श्रीमद्भगवद्गीता'' शाङ्करभाष्यार्थ, गीताप्रेसगोरखपुर, 2009 ई.
6. गोयन्दका, जयदयाल, ''श्रीमद्भगवद्गीता'', गीताप्रेसगोरखपुर, 2011 ई.
7. भक्तिवेदान्त, ए.सी., , ''श्रीमद्भगवद्गीता (यथारूप)'', भक्तिवेदान्तबुकट्रस्ट, मुंबई, 2005 ई.

ISSN 976-8645

8. शास्त्री, सुरेन्द्रदेव, ''कठोपनिषद'', चौखम्बाविद्याभवन, वाराणसी, 2007 ई.
9. कम्बोज, जियालाल, ''मुण्डकोपनिषद्'', विद्यानिधिप्रकाशन, दिल्ली, 2005 ई.
10. कम्बोज, जियालाल, ''मुण्डकोपनिषद्'', विद्यानिधिप्रकाशन, दिल्ली, 2005 ई.
11. उपाध्याय, बलदेव, ''भारतीय दर्शन'', शारदामंदिर, वाराणसी, 2001 ई.
12. सिन्हा, एच. पी., ''भारतीय दर्शन की रूपरेखा'',मोतीलालबनारसीदास, दिल्ली, 2009 ई.
13. गैरोला, वाचस्पति, ''भारतीय दर्शन'', लोकभारतीप्रकाशन, इलाहाबाद, 1966 ई.
14. भण्डारी, डी. आर., ''भारतीय दार्शनिक चिन्तन'',अखिलभारतीयदर्शनपरिषद्, दिल्ली 2002 ई.